International Journal of Humanities and Social Science Invention (IJHSSI)
ISSN (Online): 2319 – 7722, ISSN (Print): 2319 – 7714
www.ijhssi.org ||Volume 14 Issue 8 || August 2025 || PP. 196-198

व्याकरण सम्प्रदाय में भट्टोजिदीक्षित का स्थान

डॉ० मनीषा कुमारी
संस्कृत विभाग
वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा (बिहार)

संस्कृत भाषा के पूर्व छन्दस वैदिक संस्कृत अत्यधिक समृद्ध था। हमारी आर्ष संस्कृति संस्कृत ग्रन्थों में उपनिबद्ध है। संस्कृत भी पूर्णतः संस्कृत व्याकरण में वर्णित है। बिना व्याकरण के संस्कृत का यथार्थ ज्ञान करना असंभव ही है, व्याकरण की परम्परा अनादि काल से चली आ रही है, जहाँ ऐन्द्र, चान्द्र, काशकृत्स्न, कुमार, शाकटायन, सारस्वत, आपिशल, शाकल एवं पाणिनि व्याकरण प्रसिद्ध है। इन व्याकरणों में पाणिनि व्याकरण अत्यधिक प्रचलित है। पाणिनीय व्याकरण की अन्यापेक्षा सर्वश्रेष्ठता सिद्ध करने का कारण है– इसका वार्तिक एवं महाभाष्य के द्वारा पूर्णत्व को प्राप्त किया जाना। अर्थात् पाणिनि विरचित सूत्र धातु गण पाठ लिङ्गानुशासन उणादि सूत्र कात्यायन रचित वार्तिकग्रन्थ तथा पतञ्जलिविरचित महाभाष्य इन तीनों को मिलाने पर पाणिनीय व्याकरण का पूर्ण स्वरूप बनता है जो कि अपनी विशिष्ट शैली तथा व्यापकता आदि के चलते अन्य व्याकरणों की अपेक्षा अधिक प्रचलित है। यही कारण है कि आज सर्वत्र व्याकरणाध्ययन के रूप में पाणिनीय व्याकरण का ही अध्ययन होता है।

महर्षि पाणिनि रचित इन सूत्रों के उपर सूत्रानुसारी एवं प्रक्रियानुसारी दो प्रकार के व्याख्याएँ लिखी गयी। उपर्युक्त दो धाराओं के कारण ही पाणिनीय व्याकरण नव्य एवं प्राचीन के भेद से विभक्त हुआ है। नव्य धारा के सम्पोषक भट्टोजिदीक्षित एक ऐसे वैयाकरण है जिनकी शैली में सर्वत्र वैज्ञानिकता लक्षित होती है, भट्टोजिदीक्षित की सिद्धान्तकौमुदी की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इन्होंने पाणिनीय अष्टाध्यायी के लगभग 4000 सूत्रों को भिन्न–भिन्न प्रकरणों में विभक्त किया है। जहाँ संधि, नाम, शब्द, समास, कारक आदि अत्यावश्यक सभी विषयों का समावेश है। यद्यपि भट्टोजिदीक्षित रचित सिद्धान्तकौमुदी की संस्कृत, हिन्दी और अन्य भाषाओं में भी कई व्याख्याएँ हो चुकी है, फिर भी हिन्दी भाषियों के लिए एक नातिविस्तृत और नातिलघु उत्कृष्ट व्याख्या ग्रन्थ की अपेक्षा थी जिसकी व्याख्या भिन्न–भिन्न रूप में विद्वानों द्वारा स्तुत्य है। दीक्षित जी सोलहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध एवं सतरहवें शताब्दी के पूर्वार्ध के माने जाते है। महाराष्ट्री ब्राह्मण दीक्षितजी के पिताजी का नाम लक्ष्मीधर एवं गुरुजी का नाम शेषकृष्ण होने की बात विभिन्न ग्रंथों में सिद्ध होती है, इन्होंने शब्दकौस्तुभ नामक वृहददार्शनिक ग्रन्थ एवं वैयाकरण सिद्धान्त कौमुदी के टीकात्मकग्रन्थ प्रौढ़मनोरमा आदि की रचना की है, दीक्षित जी ने अष्टाध्यायीसूत्रक्रम के आधार पर शब्दकौस्तुभ एवं प्रक्रियानुसार सिद्धान्तकौमुदी की रचना की है। यद्यपि वर्तमान में तथा कथित बहुत से लोग सिद्धान्तकौमुदी की आलोचना करते है और उसे पाणिनीयाष्टाध्यायीसूत्रक्रम के विपरीत होने के कारण वृत्ति घोखने की समस्या से ग्रस्त मानते है किन्तु उनका कथन सही नहीं है क्योंकि दीक्षित जी ने यह कहीं भी नहीं लिखा है कि अष्टाध्यायीक्रम से सूत्रवृत्ति मत समझाना। उन्होंने यही समझकर सिद्धान्तकौमुदी की रचना की थी कि लोग अष्टाध्यायीक्रम में सूत्र परायण करते हुए समास, अनुवृत्ति और वृत्ति का ज्ञान भी करेंगे और सिद्धान्तकौमुदी के अनुसार प्रक्रिया भी समझेंगे। दीक्षित जी ने पाणिनी जी के सभी सूत्रों को यथावत् लिया है किन्तु कतिपय आवश्यक वार्तिक ही लिए है और कहीं–कहीं वार्तिक का स्वरूप बदल गया है।

कौमुदी का वैशिष्ट्य बताते हुए उसके सम्बन्ध में कहा गया है कि यदि कौमुदी ठीक से आती है तो भी भाष्य में अधिक परिश्रम नहीं करना पड़ेगा और कौमुदी यदि नहीं आती है तो भी भाष्य में अधिक परिश्रम नहीं करना पड़ेगा अर्थात् अनायास सरल प्रयास से ही भाष्य का तात्पर्यार्थ सुगम हो जायेगा। तात्पर्य यह है कि कौमुदी की तैयारी से महाभाष्य आसान हो जाता है और कौमुदी की तैयारी नहीं है तो महाभाष्य बिल्कुल ही समझ में नहीं आता –

कौमुदी यदि आयाति वृथा भाष्ये परिश्रमः।
कौमुदी यदि नायाति वृथा भाष्ये परिश्रमः।।

दीक्षित जी की वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी शब्दसाधुत्व की सरलता के कारण इनती प्रसिद्धि पा गयी है कि आज सर्वत्र पाणिनीव्याकरण के नाम से कौमुदी का ही ज्यादातर पठन–पाठन होता है। वैसे देखें तो यह कहना उचित नहीं होगा कि दीक्षित जी ने अष्टाध्यायीक्रम की धारा को मोड़ दिया है, क्योंकि अष्टाध्यायी से अध्ययन करने पर भी पहले सन्धि का ज्ञान होना आवश्यक है। सन्धि, समास आदि के ज्ञान के बिना अष्टाध्यायीक्रम का अध्ययन सम्भव नहीं है, क्योंकि उस क्रम में पहले सूत्रों में सन्धिविच्छेद आवश्यक है और पद भी किस समाज से निष्पन्न हुआ है, यह जानना आवश्यक ही होता है। यही कार्य किया है दीक्षित जी ने।

जिस तरह अष्टाध्यायी में सर्वप्रथम संज्ञाओं का अध्ययन है, उसी तरह कौमुदी में भी सन्ध्युपयोगी संज्ञाओं का प्रकरण है, इसके बाद सन्धि है। तत्पश्चात् पदज्ञान के लिए षड्लिङ्गप्रकरण है। षड्लिङ्गप्रकरण से सान्दर्भिक स्त्रीलिङ्गज्ञान के लिए स्त्रीप्रत्यय का प्रकरण है। अष्टाध्यायी के द्वितीय अध्याय में समास और कारकों का प्रकरण है, तदनुरूप दीक्षित जी ने स्त्रीप्रत्यय के बाद कारक प्रकरण तदनु समाज–प्रकरण रखा है। अतः यह भी कुछ परिवर्तनों के साथ अष्टाध्यायीक्रम के अनुरूप ही है। इसके बाद तद्धितप्रकरण पूर्णतया अष्टाध्यायीक्रम पर ही आधारित है, ऐसा कहा जा सकता है। यद्यपि अष्टाध्याय के तृतीयाध्याय में धातुओं से होने वाले समग्र प्रत्ययों का निरूपण है किन्तु दीक्षित जी ने सबसे पहले इनके दो भागों किया है– तिङन्त और कृदन्त। तिङन्त को भी दशगणी और शेष ण्यन्त, सन्नत आदि के रूप में विभाजित किया है। कृदन्त के चार प्रकरण है– कृत्य, पूर्वकृदन्त, उणादि और उत्तरकृदन्त। इस तरह यह प्रकरण भी पाणिनीयसूत्रानुसारी क्रम का अत्यन्त अतिक्रमण नहीं करता। दीक्षित जी ने समग्र धातुओं का विवेचन धातुपाठ के क्रम में ही किया है। इसी तरह वैदिकी–प्रक्रिया में दीक्षित जी ने अष्टाध्याय सूत्रक्रम का अनुसरण किया है किन्तु स्वर–प्रक्रिया में यह नियम सर्वाशतः संगृहीत नहीं है। दीक्षित जी ने पाणिनी जी के सभी सूत्रों की व्याख्या तो की ही है, इसके अतिरिक्त अधिकांश वार्तिकों, परिभाषाओं और अन्य आचार्यों के विचारों को भी सम्मिलित किया है, इससे यह ग्रन्थ अधिक उपयोगी सिद्ध होता है।

अष्टाध्यायीसूत्रपाठ के न रटने पर प्रक्रियानुसारी अध्ययन में अनुवृत्ति अधिकार और पौर्वापर्य का ज्ञान कठिन हो जाता है। इट्, णत्व आदि प्रकरणों के एकत्र न मिलने के कारण पदे–पदे सन्देह बना रहता है। इसके विपरीत अष्टाध्यायीक्रम में सभी प्रकरण एकत्र उपलब्ध होते हैं। इसी तरह अष्टाध्यायी के प्रक्रियानुसारी न होने कारण अष्टाध्यायी का जब तक सम्पूर्ण अध्ययन न किया जाय तब तक किसी भी एक विषय का पूर्ण ज्ञान नहीं होता। इसके विपरीत कौमुदीक्रम में अध्येता जितना अध्ययन कर लेता है, उसे उतने अंश का पूर्णतः ज्ञान हो जाता है। इस तरह यद्यपि दोनों क्रमों के लक्ष्यानुसार कुछ अंशों के गुण–दोष दृष्टिगोचर होते हैं तथापि सिद्धान्तकौमुदी व्याकरणज्ञान का एक अनूठा ग्रन्थ माना जाता है।

वास्तव में अध्येता को चाहिये कि सिद्धान्तकौमुदी के अध्ययन में काशिका को भी अपने समक्ष रखें और काशिका के अध्ययन में कौमुदी को समक्ष रखें, क्योंकि प्रक्रियानुसारी क्रम और प्रकरणानुसारीक्रम दोनों ही परस्पर सहायक तथा पूर्ण व दृढ़ज्ञान के लिए अत्युपयुक्त है।

दीक्षित जी ने अपनी कौमुदी में कहीं भी प्रकरणभंग नहीं होने दिया है। इसके प्रत्येक वाक्य परस्पर में सम्बद्ध हैं। उदाहरण देने के क्रम में भी केवल लौकिक उदाहरण न होकर अधिक से अधिक भगवद्विषयक उदाहरण देने का प्रयास किया है। इससे उनकी आस्तिकता व्यञ्जित होती है। यद्यपि सुद्ध्युपास्यः, मद्ध्वरिः, हरये, विष्णवे, उपेन्द्रः, रमः, रमा इत्यादि प्रयोगों को देखकर कुछ विद्वान् इनके केवल वैष्णव होने का आक्षेप करते हैं परन्तु शिवेहि, शिवोऽच्चर्यः, असः, शिवः, शम्भू राजते इत्यादि उदाहरणों के भी देखे जाने से यह आक्षेप करना उचित प्रतीत नहीं होता।

वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी पर अभी तक 25 से ज्यादा टीकाएँ लिखी जा चुकी हैं, उनमें बहुत सी टीकाएँ अप्राप्य हैं। जो प्राप्य हैं, उनमें से प्रौढ़मनोरमा, लघुशब्देन्दुशेखर, बृहच्छब्देन्दुशेखर, तत्त्वबोधिनी और बालमनोरमा ये पाँच टीकाएँ प्रसिद्ध हैं तथा अभी भी इनका पठन–पाठन हो रहा है।

वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी पर दीक्षित जी की स्वोपज्ञा व्याख्या प्रौढ़मनोरमा नाम से प्रतिष्ठित है। सिद्धान्तकौमुदीसूत्रवृत्ति के लेखनक्रम में जो विषय संक्षिप्त रूप में बतलाया गया था, उसी का भावस्फोरण उन्होंने इस व्याख्या में किया है। इसमें प्रक्रिया–कौमुदी और उसकी टीकाओं का स्थान–स्थान पर खण्डन भी प्राप्त होता है। दीक्षित जी के पौत्र हरि–दीक्षित ने प्रौढ़मनोरमा पर बृहच्छब्द्रत्न और लघुशब्दरत्न ये दो व्याख्यायें लिखी हैं। प्रसिद्धि है कि पण्डितराज जगन्नाथ ने मनोरमा कुचमर्दिनी नामक टीका में प्रौढ़मनोरमा का खण्डन किया है।

अध्येतागण इस बात को भी जान लें कि व्याकरण का उद्देश्य केवल शब्द ज्ञान सन्धिज्ञान मात्र नहीं है अपितु उसके साथ ही अध्येताओं को अध्यात्म की ओर प्रेरित करना भी है। इस बात पर श्री भट्टोजिदीक्षित जी एवं उनके ग्रन्थों के व्याख्याताओं ने भी विशेष ध्यान दिया है। जैसेः सुद्धध्युपास्यः, मद्ध्वरिः, धात्त्रंशः, लाकृतिः इन उदाहरणों की जगह मद्ध्वानय, दध्यानय, वद्ध्वान, पित्रंश आदि भी दे सकते थे, फिर भी उपर्युक्त उदाहरण देने का रहस्य यह है कि अध्येता शब्दज्ञान के साथ उपास्य ज्ञान भी कर लें, इतिहास आदि से भी परिचित हो लें और ततत् पौराणिक और उपषित् की घटनाओं को समझने, जानने के लिए उत्प्रेरित हो जायें। जैसे– सुधीभिः उपास्यः (विद्वानों के द्वारा उपासना करने योग्य)। यहाँ पर सुधी (विद्वान्) को किसी इष्टदेव की उपासना अवश्य करनी चाहिए। यह एक प्रेरणा है तो दूसरी विद्वानों के द्वारा उपास्य कौन है? इसकी जिज्ञासा भी। इस जिज्ञासा की पूर्ति करता है मद्ध्वरिः। मधु नामक दैत्य के शत्रु भगवान विष्णु अर्थात् विद्वानों के द्वारा भगवान् विष्णु उपास्य हैं। अब वे कैसे हैं? इस जिज्ञासा में उत्तर आया– धात्त्रंश। वह धातुः अंशः, ब्रह्मा का अंश बन कर अर्थात् ब्रह्म के शरीर से वराह आदि बनकर अथवा धाता की सृष्टि में राम, कृष्ण आदि बनकर अवतार लेता है। इसलिए वह धात्त्रंश है। उसे प्राप्त करना क्या सरल है? नहीं। वह तो लाकृति है अर्थात् लृ की तरह टेढ़ी आकृति वाला है। अतः कठिन तपस्या एवं साधना से ही प्राप्त हो सकता है। काशिकाकार ने ज्यादातर वैदिक, ऐतिहासिक व दार्शनिक उदाहरण दिये हैं तो कौमुदीकार ने ज्यादातर उपास्य देव के अवतार, भक्त और ऐतिहासिक स्थलों के बोधक शब्दों का। कहीं–कहीं व्यावहारिक प्रयोग भी दिये गये हैं।

संदर्भ ग्रन्थ :–

1. अष्टाध्यायी (पाणिनिकृत), सं.– पं. गोपाल शास्त्री दर्शनकशरी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी
2. अष्टाध्यायी भाष्य (प्रथमावृत्ति), तीनों खण्डों में व्याख्याकार – पं. ब्रह्मदत्त जिज्ञासु तथा प्रज्ञादेवी
3. प्रक्रियाकौमुदी (रामचन्द्ररचित), दो भाग, बिठ्ठलकृत प्रसाद व्याख्या सहित, सं.– कमला शङ्कर प्राणशङ्कर त्रिवेदी, संस्कृत सीरीज, बम्बई, 1925–31.
4. वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी (भटोजिदीक्षितकृत) तत्वबोधिनी तथा बालमनोरमा व्याख्यासहित, चार भाग, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी।
5. शब्दकौस्तुभ (भटोजिदीक्षितकृत), सं.– गोपाल शास्त्री इत्यादि, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, (चतुर्थाध्याय तक), 1933